International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030; Impact Factor: RJIF 5.24
Received: 19-01-2019; Accepted: 21-02-2019
www.advancedjournal.com
Volume 4; Issue 2; March 2019; Page No. 22-27

बघेलखण्ड की कलचुरि स्थापत्य कला एवं उसके विविध आयाम

डॉ० संजय कुमार मिश्रा
सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, एस०आर०पी० स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हनुमना, जिला रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
किसी देश की कला एक व्यक्ति विशेष के उत्साह का फल नहीं है, बल्कि कलाकारों की शताब्दियों की मनोरम कल्पना एवं तपस्या का परिणाम है तथा आंतरिक मनोभावों की सच्ची परिचायिका भी है। कलाकृतियॉ समान रूप से समाज के सभी अंगों को प्रभावित करती हैं। भारतीय कला–दर्शन पर विचार करने के पश्चात शिल्प को मूक काव्य कहना सर्वथा उचित होगा। भारतीय वास्तुकला संबंधी साहित्य की तिथियाँ अंधकारमय है। केवल भोजकृत 'समणांगण सूत्रधार' तथा मंडन मिश्र के शिल्पशास्त्र की तिथियाँ ज्ञात है। असाधारण स्थिति में भी भारत के प्राचीन शासकों द्वारा निर्मित भवनों और देवालयों की तिथियाँ अभिलेखों के आधार पर स्थिर की जाती हैं तथा निर्धारित की गई हैं।

मूल शब्द : बघेलखण्ड, कल्चुरी, स्थापत्य कला, विविध आयाम।

प्रस्तावना

कला मानव संस्कृति की उपज है। मानव के द्वारा कला की प्रतिष्ठा हुई और उसके द्वारा वह आत्मचैतन्य एवं आत्मगौरव प्राप्त करता रहा। कला का उद्गम सौन्दर्य की मूलभूत प्रेरणा से हुआ है। सौन्दर्य की अभिरुचि मनुष्य की अनुकरण–प्रवृत्ति द्वारा प्रमाणित होती है। मानव की सर्वोपरि चेतना प्रकृति के अनुकरण में निहित है। भारतीय कला में प्रत्यक्ष की अपेक्षा अप्रत्यक्ष तथा सत्य की अपेक्षा कल्पना को ही अधिक महत्व दिया गया है, क्योंकि कल्पना के द्वारा मनुष्य में नव चैतन्य का जन्म होता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य की भावनाओं तथा विचारों का प्रत्यक्षीकरण कला के द्वारा हो जाता है। प्रत्येक प्रकार की कलात्मक प्रक्रिया का ध्येय है – सौन्दर्य तथा आनंद की अभिव्यक्ति।[1]

भारतीय कला का विस्तार ऋग्वेद के समय से ही हुआ, अतएव शिल्पियों की परंपरा वैदिक युग से आरंभ मानते हैं।[2] इसमें अधिकांश मात्रा में कला धर्म से संबंधित है। यदि कलात्मक उदाहरणों का गंभीर अध्ययन किया जाए तो कला की लोक–मंगल कामना और उसके स्थायी भाव का गुण सर्वत्र प्रतिध्वनित होता है। इस कारण समाज में शिल्प शिक्षा के निमित्त श्रेणियॉ कार्य करती रहीं। तात्पर्य यह है कि मानव जीवन में कला का महत्वपूर्ण स्थान रहा तथा शिल्पी कल्पना के सहारे समाज को अपरिमित सुख पहुंचाते रहे।

वास्तु कला का इतिहास अत्यंन्त पुराना है। यह शब्द 'बस' धातु से बना है जिसका अर्थ है एक स्थान पर निवास करना। अर्थशास्त्र में गृह, सेतु, क्षेत्र आदि इमारतों के भाव में इस शब्द का प्रयोग मिलता है।[3] अतएव वास्तु कला का प्रतिपाद्य विषय है – मानवगृह, देवमंदिर या अन्य प्रकार के भवन। किसी भी विषय के वैज्ञानिक सिद्धान्त के सुव्यवस्थित रूप को प्रतिपादित करने के लिए आधारभूत मौलिक पदार्थो की स्थिति आवश्यक होती है।

वैदिक साहित्य में कई प्रकार की वास्तु कृतियों का वर्णन मिलता है।[4] परन्तु उनकी रचना किस प्रकार हुई, इस विषय पर प्रकाश नहीं पड़ सका है। बौद्ध ग्रंथ भी वास्तुकला की कृतियो के विवरण से परिपूर्ण है तथा उनके भग्नावशेष भी मिलते हैं। चाणक्य युग में वास्तुविज्ञान अत्यन्त प्रसिद्ध था।[5] पौराणिक साहित्य भी इस प्रकार के विवरण से भरे पड़े हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में मानव तथा देवगृहों की रचना का निरूपण पृथक पृथक किया गया है।[6]

धार्मिक परंपरा से संबद्ध जितनी इमारतें उपलब्ध हुई हैं, उनका विश्लेषण समसामयिक इतिहास के सहारे हो चुका है और उनके मूलभूत सिद्धान्तों का भी दिग्दर्शन कुछ अंश तक किया गया है। मानव निवासगृह की सामग्री में लकड़ी का अधिक प्रयोग होता रहा और इस प्रकार के विचारों के विकास में भी लकड़ी ही सर्वाधिक उपादान सामग्री थी। उसकी सहायता एवं प्रयोग से ही प्रासाद तथा देवालय निर्मित हुए।

भारतीय संस्कृति में धर्म प्रमुख स्थान रखता है। धार्मिक विचार मानव–जीवन के कर्मो का संचालन करता है तथा मनुष्य का जीवन दर्शन उसी पर आधारित है। पुरुषार्थ में मोक्ष की प्राप्ति सर्वोपरि समझ कर सारे कार्य उसी की उपलब्धि के निमित्त किए जाते हैं। वैदिक परंपरा में पुनर्जन्म का सिद्धान्त सभी को मान्य था। बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णन आता है कि यदि तपस्या का जीवन व्यतीत कर ब्रह्म में लीन होने का प्रयत्न करते हैं, ताकि संसार के बंधनो से मुक्त हो जाएँ।[6] जिस मनुष्य को वेदांत का परम ज्ञान प्राप्त नहीं होता, वह संसार में पुनः जन्म लेता है। उपनिषदों में विशेषतया छांदोग्य तथा बृहदारण्यक में कर्म के सिद्धान्त पर बल दिया गया, ताकि व्यक्ति को जीवन के लक्ष्य की ओर बढ़ने का अवसर एवं प्रोत्साहन मिलता रहे।

यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि पुराण के विष्णु की कल्पना वेदों से ली गई। वामन या वराह का उल्लेख भी ब्राह्मण ग्रंथों में मिलता है। पांचरात्र ग्रंथों में स्पष्ट उल्लेख है कि भगवत धर्म वेद से ग्रहण किया गया है।

यह कहना उचित होगा कि कालांतर में देवताओं की पूजा जिस रूप में की जाने लगी, वह प्रकार वैदिक साहित्य में नहीं मिलता परन्तु ज्ञान प्राप्ति के लिए मनन तथा देवता का चिंतन आवश्यक था। वैदिक दर्शन में शक्ति के लिए स्थान न होने पर भी देवपूजन को स्थान मिल चुका था। यही कारण है 'देवालय' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में आता है। यद्यपि प्राचीन भारतीय संस्कृति में सामूहिक धार्मिक कृत्य का अभाव–सा था, किन्तु व्यक्तिगत रूप में देवपूजन की प्रथा वर्तमान थी। समाज में देवता के रूप या उसके आलय की स्थिति अज्ञात न थी। वैदिक संस्कृति में देवपूजा के लिए पुरोहित तथा क्षत्रियों के लिए धार्मिक

स्थानों की नितांत आवश्यकता थी। अतएव वैदिककालीन देवालय को मंदिर कहना उपयुक्त होगा। पश्चिमी विद्वानों का अनुमान मात्र है कि वेदों में देवालय नामक संस्था का अभाव दीखाई पड़ता है, परन्तु उनके कथन में कोई तथ्य नहीं है। मंदिरों का निर्माण देवालय के रूप में वैदिक युग के पश्चात अवश्यमेव होने लगा। महाभारत में वास्तुकला का विशेष परिचय मिलता है। इन भवनों में शिल्प कला उच्च कोटि की थी।

प्राचीन भारत में ईसा पूर्व चौथी सदी से मंदिर निर्माण का क्रम आरंभ होकर मुसलमान काल से पहले अवरुद्ध हो गया। परन्तु मंदिरों की वास्तुकला पर कोई बाहरी प्रभाव न पड़ सका। सामाजिक विषयों के अनुशीलन से यह प्रकट होता है कि भारतीय जीवन में इस्लाम आदि का कुछ प्रभाव अवश्य हुआ। कला के क्षेत्र में साहित्य तथा चित्रशैली पर बाहरी प्रभाव स्पष्ट है वरन् आश्चर्य यह है कि वास्तुकला विशेष कर मंदिरों की स्थापत्यकला पर कुछ भी प्रभाव न पड़ सका। मंदिरों का निर्माण सर्वदा भारतीय परंपरा के अनुसार होता रहा।[7]

ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण उत्तर तथा दक्षिण भारत की स्थापत्यकला विभिन्न रूप से सामने आती है किन्तु सांस्कृतिक विचार से उनमे ंविभेद नहीं है। इस मार्ग में उच्च कोटि की बनावट कुशलता तथा कौशल के पीछे भारतीय मनः शक्ति काम कर रही थी। हिंदू विचारधारा में धर्म के संमुख मानव जीवन अप्रधान समझा गया है और उसमें ही मनुष्य के सारे प्रयास का आदर्श एवं प्रेरणा को ढूढ सकते हैं।[7]

शैव धर्म का संबंध अनार्य संस्कृति से मानते हैं। सिंधु घाटी में तत्सबंधी अवशेष मिले हैं। पशुपति शिव तथा अनेक लिंग की आकृतियाँ मोहेनजोदड़ो से उपलब्ध हुई। यों तो आर्य संस्कृति में वैदिक रुद्र का विवरण मिलता है, रुद्र का संहार रूप वैदिक स्तुतियों में विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। इसी संहार से अपनी वंश परंपरा तथा पशुधन बचाने के लिए मानव रुद्र की स्तुति करता रहा। आर्येत्तर जातियॉ शिव की पूजा करती थीं, उसका प्रमाण वैदिक साहित्य में मिलता है।[8] अथर्ववेद में देवताओं में रुद्र व्रात्यों का अधिष्ठाता बतलाया गया है।[8] किन्तु रुद्र की स्तुति के समान ही परवर्ती युग में शिव संबंधी मान्यताओं का समाज में समादर था, रुद्र तथा शिव का मिलन वैदिकाल में ही पाते हैं। उपनिषद्काल में शिव को विष्णु के सदृश प्रतिष्ठित पाते हैं।

भारत की प्राचीन स्थापत्यकला में मंदिरों का विशिष्ट स्थान है। भारतीय विचारधारा तथा संस्कृति ने छोटी–मोटी बाहरी बातों को आत्मसात कर लिया। इसी प्रकार भारतीय मंदिर देश की परंपरा तथा प्रतिभा की उपज है। प्राचीन भारत की कला में धर्म के लोकप्रिय स्वरूप की छाप दृष्टिगोचर होती है। मंदिर का वास्तु न केवल साधारण जन के आवास से भिन्न है अपितु गर्भग्रह के ऊपर विमान की उच्चता आध्यात्मिक भावना तथा विशिष्टता का प्रतीक है।[7]

मंदिर का शिखर दूर से ही उच्च स्वर में ईश्वर की सर्वव्यापकता का उद्घोष करता है। समीप आते ही मानव भक्ति में विभोर हो जाता है। संसार की ओर से हट कर आध्यामिक भावना जग जाती है। मंदिर की भित्तियों, स्तंभों तथा छतों पर उत्कीर्ण अथवा उभरी हुई आकृतियों के मध्य दर्शक अपने को भूल जाता है। देवी–देवताओं के संमुख भक्त नतमस्तक हो जाता तथा अपने कुकृत्यों पर पश्चाताप कर निर्मल एवं पवित्र भावों के निमित्त जागरूक होता है।

मंदिरों के विभिन्न स्थानों पर कलाकारों ने पशु, पक्षी, पुष्पलता, पौराणिक दृश्यों और लोककथाओं का प्रदर्शन कर सामाजिक चित्रण उपस्थित किया है तथा तरुणियां एवं कामोत्तेजक प्रसंगों के द्वारा दुष्टों के आसुरी कर्मो को दिखाया है। भक्तों के सामने देवों के प्रण चरित्र का चित्रण मनुष्य को आध्यात्मिकता की ओर ले जाता है। यानी मंदिर का स्थापत्य तथा शिल्प धार्मिक भावना का संचार करते हैं। भक्तों को यह आभास तक न होता कि जीवन में अनास्था रखने से ही कार्य की सिद्धि होगी। भगवान के पूजन से ही जीवन में पवित्र स्रोत मिलेगा और संसार में धार्मिक समुन्नति हो सकेगी।[7]

शिल्पियों में आत्मत्याग की इतनी गहरी भावना थी कि कहीं भी उन्होंने अपना नामोल्लेख तक न किया। यही कारण है कि कलाकृतियों के रचयिता के नाम अज्ञात हैं। मंदिरों की रचना कला सांसारिक तो थी वहीं धार्मिक भावनाओं सहित आध्यात्मिक साधना का एक मार्ग बना। इन बातों को ध्यानपूर्वक सोचा जाए तो प्रकट होगा कि मंदिर केवल पूजागृह ही नहीं थे बल्कि सांस्कृतिक जीवन के केन्द्र भी थे। मंदिरों की स्थापना तथा निर्माण से केवल वातावरण ही परिवर्तित नही होता, बल्कि आस–पास की धार्मिक प्रवृत्तियों के जागरण में सहायता भी करता था। मंदिर अपनी विशालता तथा दृढ़ता से उन विचारों को स्थायित्व प्रदान करता, जिनका उद्देश्य आदर्शो तथा मूल्यों की रक्षा करना था जिस भूभाग में मंदिर निर्मित होता उस क्षेत्र में बसी जनता कल धार्मिक गतिविधि वही ंकेन्द्रित हो जाती। राजा तथा प्रजा समीप की भूमि को मंदिर के लिए दान दे कर धार्मिक पिपासा को शांत करती और स्थानीय जनता को प्रेरणा भी देती थी। आध्यात्मिक चिंतन तथा जीवन के मूल्यों की सार्थकता अथवा जीवन दर्शन का ज्ञान भक्त जन मंदिरों में प्रवेश कर ही प्राप्त कर सकते हैं।[7]

आलोच्य विषय कलचुरि राज्य के उदय के कुछ पूर्व भारत में बौद्ध धर्म छाया हुआ था, पर ईसा की तीसरी–चौथी शताब्दी आते–आते वह उस राजाश्रय से वंचित हो गया, जो उसे पहले प्राप्त था। फलतः वह कलचुरि काल में ह्रासोन्मुख हो गया और उसके स्थान में शैव धर्म का प्रचार हुआ जिसमें पौराणिक देवताओं विष्णु, शिव, कार्तिकेय इत्यादि की उपासना भी चलती थी। कलचुरि काल में शैव सम्प्रदाय का बहुत उत्कर्ष हुआ।

कहना न होगा कि शिव की आराधना अनादिकाल से ही होती चली आ रही है। वैदिककाल में शिव रुद्र के रूप में पूजित थे।[9] श्वेतश्वतरोपनिषद, सांख्यायन, कीषीतकी उपनिषदों में शिव के अन्य नाम महादेव, रुद्र, महेश्वर, ईशान आदि मिलते हैं।[10]

शिव के इन्हीं रूपों से आकर्षित होकर शिवभक्त गणों द्वारा अपने आराध्यदेव के मंदिरों का निर्माण करवाना प्रारम्भ कर दिया, साथ ही शैवाचार्यो के लिये मठ का निर्माण हुआ एवं शैव मतानुयायी साधकों ने अपनी तपस्या के लिये गुफाओं की खोज की जिससे उनकी साधना में कोई खलल न पड़े और वे अपने आराध्यदेव में एकाकार हो सकें। भक्तों की भक्ति के साथ ही मंदिर–मठों का निर्माण हुआ। प्राचीन मंदिरों के अवशेष साधक की भक्ति के ज्वलंत उदाहरण हैं।

शैव मंदिर स्थापत्य के परिप्रेक्ष्य में बघेलखण्ड में प्राप्त कतिपय मंदिरों का संक्षिप्त विवरण दिया जाना समीचीन होगा। इस कड़ी में भूमरा का शिव मंदिर उल्लेखनीय है।

गुप्तकालीन यह शिव मन्दिर आज जीर्ण–शीर्ण अवस्था में ही संरक्षित है। इस मन्दिर की खोज का श्रेय राखालदास बनर्जी को जाता है। वासुदेव उपाध्याय इसे पांचवीं सदी का मानते हैं। यह मंदिर विशालकाय स्थूल का है। इसकी शिल्प संरचना नागर शैली में है। इसके गर्भगृह में शिवलिंग की स्थापना है।

भूमरा के पास ही नचना कोठार में पार्वती मन्दिर है। यह मंदिर भूमरा मन्दिर के समान है। इसे भी गुप्तकालीन कला की देन मानते हैं। दोनों मंदिरों की स्थापत्य कला मंदिर की देहरूपी संरचना से सम्बद्ध है तथा यह भारतीय पुरातत्व की धरोहर के रूप में संरक्षित है। इस मंदिर के संबंध में डॉ. ए.के. सिंह, आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृतिक एवं पुरातत्व विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा ने अपनी पुस्तक 'शिव टेंम्पिल्स ऑफ विन्ध्य रीजन' में विस्तृत जानकारी संग्रहीत है।

खोहः उच्छकल्पों का विशाल नगर खोह अब विलुप्त हो चुका है।

पूर्व में यह एक समृद्धशाली, सम्पन्न और सामरिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण नगर था जहार जोगी, संन्यासी तथा तैलप नरेशों का आधिपत्य था। अन्तिम तैलप नरेश राजा धार सिंह था जिसकी मृत्योपरान्त यह भूभाग प्रतिहारों के आधिपत्य में शामिल हुआ।[11] यह ग्राम उचेहरा से 8 किमी. दक्षिण–पूर्व में स्थित है। वर्तमान में इसे अटरिया ग्राम के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल में यहाँ एक शिव मन्दिर था, जिसका मुखी शिवलिंग प्रयाग संग्रहालय में प्रदर्शित है। यहाँ से शिव, वाराह, विष्णु, तथा अन्य देवी–देवताओं की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो रामवन, इलहाबाद, धुबेला के संग्रहालयों में संग्रहीत हैं किन्तु वाराह की भीमकाय मूर्ति वर्तमान में नगर रिषद उँचेहरा के प्रांगण में शोभायमान है। खोह में विगत वर्षो आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया की टीम ने उत्खनन कार्य किया अतः उत्खनन से किले का ध्वंशावशेष प्राप्त हुआ है तथा इसके साथ काफी मात्रा में पुरा सामग्री मिली है जिसे वे अपने साथ मुख्यालय दिल्ले ले गये।

ज्सो: जसो नागौद से 13 किमी. दक्षिण–पश्चिम में स्थित है। यहाँ पर कुँवर मठ नामक मन्दिर शिव मन्दिर है, जिसमें 1.58 मी. एक शिवलिंग प्रतिष्ठित है। देवालय के द्वार पर अभिलेख उत्कीर्ण है। कुँवर मठ के सामने पार्वती का छोटा मन्दिर है। यह मंदिर कलचुरिकला का उत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है।

मऊ सहानियाँ: यह नवगाँव से 6 किमी. की दूरी पर स्थित हैं यहाँ जगत् सागर के किनारे मठ के अवशेष है एवं इस ग्राम के 30 किमी. दूर एक प्राचीन सा मन्दिर है।[12] इस मंदिर का निर्माण किसने कराया अज्ञात है किन्तु मंदिर की वास्त एवं स्थापत्य कला से यह कहा जा सकता है कि इसे किसी न किसी कलचुरि राजाओं द्वारा ही निर्मित कराया गया होगा।

गोलामठ: मैहर से 1 किमी. की दूरी पर लिलजी नदी के किनारे गोलमठ का शिव मन्दिर स्थित है गर्भ ग्रह में ढ़ाई फुट ऊँचा और 1 फुट व्यास वाला शिव लिंग जलहरी में स्थापित हैं। इस मंदिर का निर्माण 10वीं शदी में कलचुरि राजाओं द्वारा निर्मित कराया गया था। यहाँ यह मठ शैवाचार्यो के निवास एवं अध्ययन अध्यापन के लिये बनवाया गया होगा।

बेला–बैजनाथ का लकुलीस शिव मन्दिर: यह स्थान रीवा सतना मार्ग पर रीवा से लगभग 13 किमी. उत्तर–पश्चिम में स्थित है। मन्दिर के गर्भ ग्रह में शिवलिंग स्थापित है पास ही में एक नव निर्मित शक्ति मंदिर भी विद्यमान है। मन्दिर के समीप ही एक बड़ी बावली है। यहाँ यत्र–तत्र पुरावेश बिखरे पड़े हैं। लक्ष्मणराज ने ह्रदय शिव आचार्य को मधुमती से बुलाकर बैजनाथ मठ का संरक्षण सौपा था।[13]

गुढ़: यह रीवा मुख्यालय से 20 किमी. की दूरी पर स्थित है। गुढ़ से लगभग 1 किमी. से कुछ ही अधिक की दूरी पर दक्षिण–पूर्व दिशा में झदवा ग्राम है। जहाँ से शैव प्रतिमायें प्रकाश में आई हैं। इसी ग्राम के रामसागर तालब के किनारे एक मन्दिर है जिसके गर्भ गृह में शिवलिंग स्थापित है। इस शिवलिंग में शिव पार्वती का अंकन है।[14]

देवतलाब: यह रीवा से 50 किमी. उत्तर–पूर्व राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 7 पर स्थित है। यहाँ कलचुरिकालीन सोमनाथ मंदिर है। यहाँ एक भैरव मन्दिर भी है। यह मंदिर आज भी शैव भक्तों के लिए आस्था का केन्द्र बना हुआ है। इसकी मान्यता है कि 12 ज्योर्तिलिंगों में प्रसिद्ध बैजनाथ धाम (झारखण्ड) का दर्शन करने के बाद इस मंदिर में जल चढ़ाने की परम्परा है। ऐसी मान्यता है कि जब तक इस मंदिर में जल नहीं चढ़ाया जाता तब तक बैजनाथ धाम के दर्शन व जल चढ़ाने का पूर्ण पुण्य नहीं मिलता। अतः शैव धर्मावलम्बी यहाँ जल चढ़ाने के बाद बिरसिंहपुर के शिव मंदिर में भी जल चढ़ाते हैं।

गुर्गी: यह ग्राम रीवा से 20 किमी. दक्षिण–पूर्व दिशा की ओर स्थित है। यहाँ प्राचीन मन्दिरों एवं मठों के खण्डहर हैं। कलचुरियों के शासनकाल में गुर्गी का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान था। गुर्गी अभिलेख में[15] उल्लेख है कि युवराज देव प्रथम ने मत्तमयूर सम्प्रदाय के आचार्यों को आमन्त्रित कर बहुत से भव्य शैव मन्दिरों और मठों का निर्माण करवाया। इसका आध्यात्मिक गुरू प्रभावशिव था। प्रभावशिव के शिष्य प्रशांत शिव नें गुर्गी में शिव का एक मेरु सदृश्य विशाल एवं उत्तुंग देवालय बनवाया था। यह मन्दिर युवराजदेव द्वारा निर्मित कैलाश सदृश शिव मन्दिर के उत्तर में था।[16] इस मन्दिर में प्रतिष्ठित हर गौरी की सुन्दर युगल मूर्ति इन दिनों रीवा के पद्मधर पार्क में अवस्थित है। यह युगल मूर्ति शिल्प विधान के आधार पर अद्वितीय है जिसे विश्व धरोहर में शामिल किया गया है। इसी मन्दिर का मुख्य तोरण द्वार रीवा किले के पूर्वी द्वार की शोभा बढ़ा रहा है जिसे वर्तमान में पुतरिहा दरवाजा के नाम से अभिहित किया जाता है। इस तोरण द्वार में अनेक देवी–देवताओं तथा दिग्पालों की मूर्तियॅा अपने अलंकरण के साथ उकेरी गई हैं।

खजुहा: यह ग्राम रीवा से लगभग 15 किमी. की दूरी पर स्थित है यहाँ एक प्राचीन शिव मन्दिर है।[17] जिसे कलचुरि नरेश कर्णदेव की बहन ने बनवाया था, मन्दिर के पुरावशेष यत्र–तत्र बिखरे हैं। यह शिव मन्दिर अब ढुढ़ेश्वर महादेव के नाम से विख्यात है। इस मंदिर के पास ही एक और मंदिर हैं जिसमें भगवान विष्णु की शेषशायी प्रतिमा स्थापित है। खजुहा के मंदिर कलचुरिकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। अमरकंटक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो0 सी0डी0 सिंह ने भी ढुंढेश्वर महादेव के मंदिर का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन कर उसमें कुछ नवीन तथ्यों का समावेश किया है।

हाटा: यह ग्राम रीवा से 128 एवं हनुमना से 3 किमी. दक्षिण–पूर्व की ओर स्थित है। यहाँ एक प्राचीन शिव मन्दिर है।[18] शिवरात्रि के दिन यहाँ मेले का आयोजन होता है। इस मंदिर में शिव–पार्वती की मूर्ति अंकित है। यह मंदिर भी कलचुरि वास्तु कला का उत्कृष्ट नमूना है। अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के तत्कालीन विभागाध्यक्ष प्रो. राधाकान्त वर्मा ने अपने सर्वेक्षण दल – डॉ. ए.के. सिंह, डॉ. महेशचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ शीतला प्रसाद सिंह, डॉ. अजय सिंह, डॉ. राधेश्याम साहू एवं फोटोग्राफर श्री नैमुद्दीन के साथ ग्राम हाटा का गहन सर्वेक्षण किया जहाँ शिव मंदिर के अतिरिक्त भी कई कलचुरिकालीन मंदिरों एवं मूर्तियों के भग्नावशेष प्राप्त हुये कुछ पुरा सामग्रियों को वे अपने साथ विश्वविद्यालय संग्रहालय रीवा लाकर संरक्षित किया।

चन्द्रेह: यह स्थान गोपद–बनास तहसील में सोन नदी के किनारे स्थित है। यहाँ सोन–गोपद–बनास नदियां का संगम है जिसे भ्रमरसेन के नाम से जाना जाता है तथा विन्ध्य मेखला के इस भाग को प्रीतिकूट कहा जाता है। इसी संगम पर बलदाऊ जी की समाधि के प्रतीक रूप में एक लाठ का निर्माण भी कराया गया है। इस शिव मन्दिर का निर्माण कलचुरि नरेश ने करवाया था और साथ ही उसके समीप शैव आचार्यो के निवास हेतु मठ का निर्माण भी करवाया था। प्रबोध शिव का चन्द्रेह अभिलेख प्रसिद्ध है।[19] यह मंदिर वर्तमान में भारतीय पुरातत्व विभाग के संरक्षण में है। मंदिर के समीप बने मठ में शैवाचार्यो का आवास था साथ ही जनश्रुति के अनुसार यह मठ तत्कालीन शिक्षा का केन्द्र भी था

जहाँ धर्म एवं दर्शन की पौराणिक शिक्षा भी प्रदान की जाती थी।

माडा की गुफाय: सीधी जिले (वर्तमान में सिंगरौली जिले) के पूर्वी–दक्षिणी भाग में प्राचीन गुफाएँ हैं जो वर्तमान में पर्यटकों एवं सैलानियों के लिए आकर्षण का केन्द्र हैं क्योंकि गुफाओं के समीप एक प्राकृतिक झरना भी है जिससे स्पष्ट करती/वाहित शीतल वायु वातावरण को आनन्दानुभूति उत्पन्न करते हुए अत्यधिक मनोरम आह्लादित प्रतीत होती है। ये गुफाएँ भी वास्तु स्थापत्य की दृष्टिकोण से अजन्ता–एलोरा की गुफाओं से कमतर नहीं हैं। मात्र अन्तर है तो उनके काल निर्धारण में क्योंकि अजन्ता–एलोरा एवं बाघ की गुफाएँ बौद्धकालीन होने से बौद्ध धर्म एवं दर्शन का प्रतिनिधित्व करती है वरन् माडा की गुफाएँ शैव सम्प्रदाय से सम्बद्ध हैं। जब डॉ अलेक्जेण्डर कनिंघम ने विन्ध्य प्रदेश का गहन ऐतिहासिक सर्वेक्षण कर रहे थे उस समय उनका ध्यान इन गुफाओं में गया। फलतः उन्होंने इनका गहन सर्वेक्षण कर वास्तुशास्त्रीय अध्ययन किया।
कनिंघम ने माडा की गुफाओं को तीन समूहों में बांटा है। उन्होंने उन्हें बारादरी माडा, छेबारी माडा एवं रावण माडा की संज्ञा प्रदान की है।[20] परन्तु गुफाओं की स्थिति के अनुसार इन्हें चार भागों में बांटा गया है।[21]

रावण–माड़ा समूह
रावण माड़ा बस्ती से 1 किमी. की दूरी पर स्थित है। आकार के आधार पर इन्हें बड़ी रावण–माड़ा एवं छोटी रावण–माड़ा के बाग से जाना जाता है। इन दोनों गुफाओं के मध्य एक छोटी सी शैलोत्कीर्ण कोठरी है।

गुफा क्र.1 (बड़ी रावण–माड़ा): यह गुफा उत्तराभिमुख है। इस गुफा में आठ स्तंभों एवं चार अर्धस्तंभों पर आधारित मण्डप है। स्तंभों पर आधारित मण्डप की माप 8 मी. × 4.5 मी. है। इस गुफा को प्रत्येक दृष्टि से अलंकृत किया गया है। गर्भगृह के द्वार अलंकृत है। रावण माड़ा मुर्तिकला की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

गुफा क्र. 2 छोटी रावण–माड़ा: बड़ी रावण–माड़ा के पश्चिम में छोटी रावण माड़ा विद्मान है। गुफा में दो पूर्ण एवं दो अर्ध स्तम्भों पर आधारित मण्डप है। मण्डप की माप 4.10 × 2.10 मी. है। गर्भ गृह की माप 2.28×2 मी. है। गर्भ गृह के द्वारा दांयें ओर स्थानक शिव की प्रतिमायुक्त एक–एक पैनल है। जिनमें पूर्वी दिशा के पैनल में रावण को कैलाश पर्वत उठाते हुये तथा पश्चिम में नटराज शिव को उत्कीर्ण किया गया है।

जलजलिया देवी माड़ा समूह
जलजलिया माड़ा देवी समूह रावण माड़ा समूह एवं गणेश माड़ा समूह के मध्य में है।

गुफा क्र.1: यह एक छोटी सी गुफा है जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इसका निर्माण कार्य पूर्ण नहीं हो सका। गुफा के सम्मुख भाग पर हर–गौरी की युगल प्रतिमा उत्कीर्ण है। जिनके सिर पर पाँच नागफन का छत्र है।

गुफा क्र. 2: इस गुफा में दक्षिणाभिमुख तथा चार स्तंभों पर आधारित एक संकरा बारंडा है। बारंडे की माप 4×1.70 सेमी. है, जो अब छतिग्रस्त अवस्था में है।

गणेश माड़ा समूह: यह समूह बस्ती के सबसे निकट स्थित है। इस पहाड़ी में अनेक छोटी–बड़ी गुफायें, शैलोत्कीर्ण मन्दिर एवं शिवलिंग आदि निर्मित है। उत्तरी दिशा में एक प्रकोष्ट के मध्य में चतुर्भुजी आसनस्थ गणेश की विशाल एवं सुन्दर प्रतिमा उत्कीर्ण की गई है।[23]

गुफा क्र. 1: उत्तरी दिशा से पहाड़ी चढ़ते समय आधी से कम ऊँचाई पर 3 गुफायें पंक्तिबद्ध हैं। इसकी प्रथम गुफा एक छोटी सी कोठरी है। इस कोठरी की माप 2×2मी. है।

गुफा क्र. 2: यह भी एक छोटी सी कोठरी के रूप में है। इसकी माप 2.20×2.10 मी. है। इसके अन्दर 90×70सेमी चौकी बनी है।

गुफा क्र. 3: यह गुफा दोनों अन्य गुफाओं से अपेक्षाकृत आकार में बड़ी एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण है ऐसा प्रतीत होता है कि इस गुफा के सम्मुख भाग में स्तंभों पर आधारित एक मण्डप रहा होगा। मण्डप के दोनों ओर स्थानक शिव की प्रतिमा युक्त एक–एक चैनल है।

गुफा क्र. 4: यह दो पूर्ण एवं दो अर्ध स्तंभों पर आधारित छोटी सी कोठरी है इस कोठरी की माप 2.55+1.15 मी. है। इसके स्तंभ चौकोर एवं सादे हैं। इसमें 90+45 सेमी की चौकी है।

गुफा क्र. 5: पहाड़ी की दक्षिणी ढ़लान पर तीन गुफायें मिलती है उनमें से यह प्रथम है। यह अन्दर आयताकार कक्ष है। जिसकी माप 4.40×1.80मी. है।

गुफा क्र.6: यह गुफा क्र.5 से सटी हुई है। भीतर कोठरी की माप 1.80×1.75 मी. है। इस कोठरी में चट्टान को काटकर 1.15×0. 65 मी. की चौकी का निर्माण किया गया है।

गुफा क्र. 7: यह गुफा क्र. 6 से सटी हुई है। इसकी माप 2+1. 30मी. है।

गुफा क्र. 8: गुफा क्र 5,6,7 से थेड़ा नीचे उतरने पर दांयी ओर एक विशाल एवं महत्वपूर्ण गुफा है। यह गुफा दक्षिणाभिमुख है। इस गुफा में एक बड़ा मण्डप है जो 7.65 मी. लम्बा एवं 4 मी. चौड़ी है। गर्भ गृह की माप 2.87×2.82 मी. है। द्वार के बांयी ओर एक स्थानक देवता की घिसी हुई प्रतिमा स्थित है।

गुफा क्र. 9: यह गुफा क्र. 8 के दांयी ओर कटी हुई दो पूर्ण एवं अर्ध स्तंभों पर आधारित एक छोटा सा कक्ष है, जिसकी माप 2. 40×1.40 मी. है।

गुफा क्र. 10: पहाड़ी के पश्चिमी किनारे पर पड़े हुये पाषाड़ खण्ड को काट कर इस गुफा का निर्माण किया गया है। यह गुफा पश्चिमाभिमुख है। इसके सम्मुख भाग में एक छोटा सा मण्डप है। जो 3.85 मी. लम्बा एवं 1.82 मी. चौड़ा है। मण्डप की बांयी दीवार पर 10 भुजी नटराज की मूर्ति उत्कीर्ण है।

गुफा क्र. 11: गुफा क्र. 10 के सम्मुख एक विशाल शिलाखण्ड को काटकर इस गुफा का निर्माण किया गया है। गुफा के अन्दर की पार्श्वभित्ति पर भगवान शिव की त्रिमूर्ति उत्कीर्ण है।

शैलोत्कीर्ण मन्दिर क्र. 1: यह मन्दिर पहाड़ी के शिखर पर विद्यमान है। यह मन्दिर पूर्वाभिमुख एवं त्रिरथी योजना के अन्तर्गत बनाया गया है। गर्भ गृह का भीतरी माप 2.40+1.70 मी. है। मन्दिर के सम्मुख चट्टान को काटकर एक शैलोत्कीर्ण शिव लिंग स्थापित है।[22]

शैलोत्कीर्ण मन्दिर क्र. 2: पहाड़ी की पूर्वी–पश्चिम दिशा में थोड़ी दूरी पर एक छोटे से पाषाड़ खण्ड को काटकर इस लघु मन्दिर का निर्माण किया गया है। गर्भ गृह के भीतरी दीवार में दोनों ओर चौकोर तथा सादे पैनल हैं। जिनमें मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं।

विवाह माड़ा समूह

इस समूह की गुफायें गाँव के पश्चिम की ओर लगभग 3 किमी. दूर घने वन में स्थित है। विवाह माड़ा समूह में तीन गुफायें हैं जो उत्तराभिमुख है।

गुफा क्र. 1: इस गुफा में बारह पूर्ण एवं छः अर्ध स्तम्भों पर आधरित मण्डप है। मण्डप की माप 9×25×7.5 मी. है। इस गुफा में तीन कक्ष है। सभी के द्वार सादे हैं। ललाट बिम्ब बने हुये है किन्तु उसमें कोई प्रतिमा उत्कीर्ण नहीं की गई है।

गुफा क्र. 2: गुफा क्र. 2 इस समूह की प्रमुख गुफा है। इस गुफा के सम्मुख भाग में चार स्तंभों पर आधारित मण्डप है। जिसका सम्मुख भाग टूट चुका है। मण्डप के मध्य में चौकी बनी है। जिस पर चर्तुमुखी शिवलिंग स्थापित है। शिवलिंग के ऊपरी भाग टूट चुका है।

गुफा क्र. 3: इस गुफा में 16 पूर्ण एवं 6 अर्धस्तंभों पर आधारित मण्डप है। प्रथम पंक्ति के स्तंभ अलंकृत है। मण्डप के अन्दर से स्तंभ चौकोर एवं सादे हैं। मण्डप के आन्तरिक भाग की माप 10. 45 × 3.75 मी है।

इन सभी गुफाओं में शिव एवं शिव परिवार के सदस्यों की मूर्तियों का अंकन है तथा कालान्तर में शैव सम्प्रदाय के लोगों के साधना का केन्द्र रही है। कलचुरि वंश के राजाओं ने शैव सम्प्रदाय को सदा–सर्वदा से संरक्षण देते रहे हैं। अतः इन गुफाओं को देखने आभास होता है कि ये गुफायें भी तत्कालीन मानव निर्मित हैं।

सोहागपुर का विराटेश्वर मंदिर: शहडोल से 3 किमी. उत्तर की ओर विराटेश्वर महादेव का ऐतिहासिक मंदिर है।[24] मंदिर के बाहर तथा अन्दर देवी–देवताओं की सुन्दर अकृतियाँ उत्कीर्ण है। यह भव्य मंदिर कलचुरि नरेशों द्वारा 10–11वीं शताब्दी के मध्य निर्मित कराया गया। पौराणिक युग में इसे विराट नगरी के नाम से अभिहित किया जाता था। यह महाभारत काल में विराट नगर के नाम से जाना जाता था। अतएव संभवतः इस मंदिर का नामकरण भी विराट के नाम से ही विराटेश्वर मंदिर कहा गया हो। यह मंदिर चन्द्रेह के मंदिर के समान ही उत्कृष्ट स्थापत्य कला का साक्ष्य है। यह भी भारतीय पुरातत्व विभाग के संरक्षण के अधीन है। मंदिर की सुरक्षा में भारतीय पुरातत्व विभाग के कर्मचारी पदस्थ हैं। मंदिर के समीप कुछ ही दूरी में एक मठ का भी भग्नावशेष है। सम्भवतः यह शैवाचार्यो की निवास स्थली रहा होगा। मुख्य मंदिर के उत्तर–पूर्व की ओर कई छोटे–छोटे मंदिरों के अवशेष भी बिखरे पड़े हैं।

मरीबाग का विश्वनाथ मंदिर: यह उमरिया रेल्वे स्टेशन से लगभग 3 किमी. की दूरी पर स्थित हैं यह कलचुरि कालीन मंदिर है।[23] युवराजदेव प्रथम ने मत्तमयूर शैवाचार्यों को बुलाकर मंदिर एवं मठों का निर्माण करवाया था जिनके उदाहरण आज भी गुर्गी, महासाँव, चन्द्रह, बिलहरी, भेड़ाघाट, बेला, चुनरी आदि पुरास्थलों पर दृष्टव्य है।

मुकुन्दपुर: यह ग्राम अमरपाटन तहसील के अन्तर्गत आता है। रूपसागर सरोवर के तट पर अनेक प्राचीन मन्दिरों के अवशेष है। प्रधान मंदिर में इन दिनों शिवलिंग प्रतिष्ठित है। तथापि ललाटविम्ब पर गरुड़ पर सवार विष्णु के अंकन से यह वैष्णव मंदिर प्रमाणित हैं। गांगेयदेव के अभिलेख से भी पता चलता है कि गृहपति कुलभूषण श्रेष्ठि दामोदर ने जलशायन (शेषशायी विष्णु) के एक मंदिर का निर्माण कराया था।[25] किन्तु शैव सम्प्रदाय के लोग इस मत्तमयूर शिवोपसकों द्वारा ही निर्मित मानते हैं। वर्तमान में यह मंदिर हिन्दुओं की पूजा स्थली के रूप में विख्यात है। मुकुन्दपुर वर्तमान में हिन्दू एवं मुस्लिम के समन्वय स्थली के रूप में जाना जाता है क्योंकि यहाँ जहाँ एक ओर हिन्दुओं के पूजा अर्चना का प्रसिद्ध स्थल हैं वहीं दूसरी ओर साई बाबा की तपस्थली होने के कारण यह मुस्लिम समुदाय के लोगों के लिए भी आस्था का केन्द्र है। दोनों समुदाय के लोग धार्मिक उत्सवों को मिल–जुलकर मनाते हैं। यहॉ आज तक कभी भी साम्प्रदायिक तनाव देखने को नही मिला।

परैनी: रीवा जिले के परैनी ग्राम से कलचुरी कालीन वैष्णव मंदिर के भग्नावशेष तथा वराह प्रतिमा प्राप्त हुई है।[26] इसी के साथ ही वहाँ पर एक शिव मंदिर के अवशेष के साथ ही शिवलिंग एवं जलहली प्राप्त हुई है इससे स्पष्ट होता है कि यह भी कलचुरियों के द्वारा ही निर्मित कराया गया है।

बांधवगढ: बांधवगढ़ वर्तमान मे उमरिया जिले के अर्न्तगत आता है। उमरिया व्यवहारी मार्ग पर ताला ग्राम से 5 किमी. की दूरी पर ऐतिहासिक सामरिक दृष्टिकोण से अभेद्य किला स्थित है। जहाँ पर कई आक्रान्ताओं ने चढ़ाई की किन्तु आक्रमण में सफल नही हो सके। यहां पर एक भव्य शिव मंदिर अवस्थित है जिसमें शिवलिंग के साथ ही शेषशायी विष्णु की प्रतिभा भी विराजमान है। बांधवगढ़ कलचुरियों की राजधानी थी जो बाद में उन्होंने बघेल राजाओं को दहेज (दान) में दी गई। वर्तमान में यह भूभाग राष्ट्रीय अभयारण्य के रूप में पर्यटक स्थल के रूप में विकसित किया गया है।

मोरवी (सीधी): सीधी जिले के मोरवी के पास पड़री ग्राम में एक मध्यकालीन मंदिर के अवशेष के प्रमाण मिले हैं। मंदिर में चर्तुभुजी प्रतिमा स्थापित है। विष्णु के पार्श्व में चक्र पुरुष एवं गदा देवी का अंकन है। विष्णु प्रतिमा के बगल में गणेश और सूर्य की प्रतिमायें भी संग्रहित हैं।

दुधिया (रीवा): रीवा जिले के दुधिया ग्राम में कलचुरि कालीन केशव नारायण मंदिर है, जहाँ विष्णु की प्रतिमा स्थापित है। यहीं से एक और विष्णु की प्रतिमा स्थापित है। यही से एक और विष्णु प्रतिमा भी प्राप्त हुई है।[27] साथ ही एक मठ तथा शिव मंदिर भी है जिसमें शिवलिंग स्थापित है।

अमरकंटक: अमरकंटक सोन, जुहिला एवं नर्मदा नदियों का उद्‌गम स्थल होने के कारण धार्मिक नगरी के रूप में भी विख्यात है। यह घने वनों से अच्छादित प्राकृतिक मनोरम एवं रमणीक स्थल हैं जिसे पर्यटक स्थल के रूप में भी घोषित किया गया है। यहाँ पर अनेक शिव मंदिरों का समूह है। जिनमें से गया कण द्वारा निर्मित शिव मंदिर देवतालाब मंदिर की तरह भव्य एवं शिल्पशास्त्रीय दृष्टिकोण से अद्वितीय है। वहीं पर नर्मदा माता का मंदिर भी ऐतिहासिक एवं पूज्य है। इसके साथ ही सभी मंदिरों में पूजा अर्चना की जाता है।

सिंह वाहिनी (रायपुर): रायपुर से लगभग 2 किमी. दक्षिण–पूर्व में झदवा नामक ग्राम में रामसागर तालाब के ऊपर एक शाक्त मंदिर है। मंदिर में ढ़ेर सारी कलचुरि कालीन प्रतिमायें हैं।[28] इनकी संख्या 12 है। शेष प्रतिमायें खण्डित हैं। बीच में सिंहवाहिनी की

प्रतिमा है, जो सिंह पर सवार है। देवी परम्परागत आभूषण एवं आयुधों से सुसज्जित हैं।[28] यहाँ पर मकर संक्रान्ति के अवसर पर एक भव्य मेला का आयोजन होता है जिसमें क्षेत्रीय लोग शारीक होकर पूजा–अर्चना करते हैं।

नरोः सतना जिले के रामपुर बघेलान तहसील मुख्यालय से दक्षिण 15 किलोमीटर की दूरी नरो पहाड़ में एक मड़फा है जो जीर्ण–शीर्ण अवस्था में है। नीचे वेदिका की मिट्टी निकल जाने से यह जर्जरावस्था में है किन्तु मंदिर का ऊपरी भाग पूरी तरह सुरक्षित है। इसकी संरचना चन्द्रेह के मंदिर के समान है। मंदिर के अन्दर कोई मूर्ति नहीं है किन्तु जलहली के अवशेष अब भी मौजूद हैं जिससे स्पष्ट होता है कि यह शिव मंदिर ही है। पहाड़ी के ऊपरी भाग में कई मंदिरा के अवशेष (गुम्बद आमलक आदि) बिखरे पड़े हैं। वही पर एक गणेश की मूर्ति पड़ी है। इसके साथ ही वहाँ कई मूर्तियाँ यत्र–तत्र बिखरी पड़ी हैं जिनमें शिलालेख भी अंकित हैं जो अवाच्य हैं।

पहाड़ी के मध्य भाग में एक चबूतरा बना है जिसमें नृसिंह अवतार की सुन्दर मूर्ति विराजमान है। इसके नीचे परिकर में सूर्य एवं कई मातृ देवी–देवताओं की खण्डित मूर्तियाँ संग्रहीत हैं। पहाड़ी के उत्तरी भाग में एक प्राकृतिक झरना विद्यमान है, उसके ऊपर एक बड़ी गहरी गुफा है, गुफा के द्वार पर सप्तमातृका देवी की भग्न मूर्ति पड़ी है। जनश्रुतियों के आधार पर यहाँ किसी तेली राजा धार सिंह का राज्य था किन्तु वर्तमान यह पूरी तरह वीरान है। पूरे पहाड़ी में किला एवं बस्तियों के अवशेष अवश्य विद्यमान हैं। किन्तु प्राप्त मंदिर एवं मूर्तियों की शिल्पीय संरचना से प्रतीत होता है कि ये मूर्तियाँ कलचुरिकालीन ही हैं।

निष्कर्ष

मंदिर के रूप विधान की कल्पना एक युग का कार्य न था किन्तु कलाकार ध्यानावस्थित होकर नए नए विचारों को लेकर अपनी कुशलता दिखलाते रहे। कलाविदों ने सही विचार किया कि जो परमत्मा मनुष्य के शरीर में अंतर्निहित है सूक्ष्म रूप में विराजमान है उसी की प्राण प्रतिष्ठा कर देवालय में रखते हैं। अतएव मूर्तिकारों ने उस देव की मानवाकृति तैयार की जिसे मंदिर के गर्भगृह में स्थापित किया गया उसी विचार से प्रेरित होकर इस बात की कल्पना की गई कि मानव शरीर के अंदर रहने वाले देव को बाहर प्रतिष्ठित करने के लिए मनुष्य की देही कल्पना का मूर्त रूप मंदिर तैयार किया गया। अतः यह कहना यथार्थ होगा कि देवता का आवास मंदिर को मनुष्य के शरीरिक अंगों के सदृश व्यक्त किया गया। उसी में प्राणप्रतिष्ठा के पश्चात उपासक पूजा कार्य संपन्न करता है।

जिस चबूतरे पर मंदिर का निर्माण होता है यानी सारे मंदिर का बोझ संभलता है वह पाद कहा जाता सकता है। उसके ऊपर का भाग पैर एवं जांघ का द्योतक है। जहाँ से मंदिर का भीतरी भाग दिखलायी पड़ता है वही कटि स्थित है। भीतरी भाग पेट का रूप खड़ा करता है। छत के ऊपर छाती तथा स्कंध का संकेत मिलता है। शीर्ष तथा शिखा मानव का सर है यानी मंदिर का शीर्ष भाग मनुष्य के सिर के समकक्ष माना गया है। इस प्रकार मानव देह की कल्पना लेकर मंदिर का निर्माण हुआ।

हिन्दू धर्म में मंदिर का निर्माण पारलौकिक कार्य को ध्यान में रख कर किया जाता है, भक्त इष्टदेव को पुकार सुनाने वहाँ एकत्रित होते हैं। अतएव गर्भगृह के बाद ऐसे मंडप की आवश्यकता प्रतीत हुई जहाँ भक्तजन आराधना कर सकें एवं उपदेश सुन सकें। ऐसे मंडप के निर्माण से अन्य कार्यों में भी सहायता मिली।

इस तरह कहना न होगा कि मंदिर स्थापत्य का विकास वैदिककाल से ही आरम्भ हो गया था। तदनन्तर यह प्रक्रिया मौर्य, सातवाहन, शुंग, कनिष्क, गुप्त काल के गलियारों से गुजरते हुये राजपूतयुग तक अनवरत अबाध गति से बढ़ती रही। राजपूत युग में यह विभिन्न राजवंशों में पुष्पित एवं पल्लवित हुई।

इस तरह से बघेलखण्ड में कलचुरि राजाओं ने अनेक शिव मंदिरों, मठों का निर्माण कराकर, उत्कृष्ट शिल्प काल की मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा कराकर भारतीय स्थापत्य कला एवं प्रतिमा विज्ञान में एक नूतन अध्याय का समावेश किया। जैसा कि विहित है कि राजपूत युग में कलचुरि–हैहय–चेदि वंश अपना प्रमुख स्थान रखता है। कलचुरि राजाओं के शासन काल में कला शिल्प एवं साहित्य का अबाध गति से विकास हुआ। कला शिल्प की दृष्टि से यह काल जेजाकभुक्ति के चंदेलों से कमतर न था।

सन्दर्भ

1. श्रीवास्तव, डॉ. बृजभूषण – प्राचीन भारतीय प्रतिमा–विज्ञान एवं मूर्तिकला, भूमिका से
2. ऋग्वेद 10.17.6
3. अर्थशास्त्र, अध्याय– 61
4. ऋग्वेद, 10.17.12
5. अर्थशास्त्र, 61.2.8
6. विष्णु धर्मोत्तर पुराण 8.11.7
7. श्रीवास्तव, डॉ. बृजभूषण – प्राचीन भारतीय प्रतिमा–विज्ञान एवं मूर्तिकला
8. ऋग्वेद से
9. ऋग्वेद, 6.4.10, 6.12.16, 9.13.3
10. बनर्जी, जे.एन. – डेवलपमेंट आफ हिन्दू आइकानोग्राफी, पृ. 404–66
11. बसोर फूलचंद – चेतना, पृ. 68
12. तथैव पृ. 141
13. अली रहमान आर्ट एण्ड अर्किटेचर आफ दि कल्युरीज, पृ. 16
14. शोधार्थी सर्वेक्षण के पश्चात् प्राप्त जानकारी
15. अली रहमान आर्ट एण्ड अर्किटेचर आफ दि कल्युरीज, पृ. 16 एवं कार्पस खण्ड 4, पृ. 227–28, श्लोक 7
16. तथैव पृ. 228, श्लोक 11 एवं अली रहमान अर्किटेचर ऑफ दि कल्चुरीस
17. अली रहमान आर्ट एण्ड अर्किटेचर आफ दि कल्युरीज, पृ. 50
18. चौहान जतिन सिंह, रीवा राजदर्पण, पृ. 434, 1907, इन्दौर
19. कार्पस इन्सक्रिप्सन इंडिकेरम कार्पस खण्ड, 4 पृ. 198–204
20. क्निंघम, अलेक्जेन्डर, आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट पृ.14
21. सक्सेना चैतन्य, पुराततव के झरोखे से सीधी जिले का दर्शन बीथिका, पृ. 8
22. चौहान डॉ. संतोष सिह – सोनांचल नमामि से
23. अली रहमान आर्ट एण्ड अर्किटेचर आफ दि कल्युरीज, पृ. 27
24. एपि. इण्डि खण्ड 1, पृ. 354, कार्पस खण्ड 4, पृ. 234–35 एवं म.प्र. के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ, पृ. 308
25. शर्मा, राजकुमार, म.प्र., पुरा. सं.ग., पृ. 304
26. शर्मा, राजकुमार, म.प्र., पु. संदर्भ ग्रंथ पृ. 302
27. शोधार्थी को सर्वेक्षण के पश्चात् प्राप्त प्रतिमा
28. द आन्ध्रप्रदेश जनरल ऑफ आर्कंयोलाजी खण्ड 2, पृ. 71–80